



Original Article

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में चित्रित नारी समस्याएँ

डॉ. युवराज राजाराम मुळये

प्रोफेसर एवं हिंदी विभाग प्रमुख,

श्री सिद्धेश्वर महाविद्यालय माजलगाव तहसील माजलगाव, जिला बीड महाराष्ट्र

Manuscript ID:

IJAAR-C130311

ISSN: 2347-7075

Impact Factor – 8.141

Volume - 13

Issue - 3

January – February 2026

Pp. 49 - 54

Submitted: 18 Jan.2026

Revised: 23 Jan. 2026

Accepted: 10 Feb. 2026

Published: 28 Feb. 2026

Corresponding Author:

डॉ. युवराज राजाराम मुळये

Quick Response Code:



Website: <https://ijaar.co.in/>



DOI: 10.5281/zenodo.22785305

DOI Link:

<https://doi.org/10.5281/zenodo.22785305>



Creative Commons



सार:

21वीं सदी का हिंदी साहित्य, विशेषकर महिला लेखन, नारी की पारंपरिक छवि को तोड़कर उसकी अस्मिता, अधिकारों और स्वतंत्र अस्तित्व के यथार्थ चित्रण पर केंद्रित है। समकालीन महिला रचनाकारों ने मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, अलका सरावगी, ममता कालिया, अनामिका जैसी लेखिकाओं ने स्त्री जीवन के संघर्षों को अत्यंत मुखर और संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज हमेशा से ही पुरुष प्रधान रहा है। हमारी सांस्कृतिक मान्यताएँ, रूढ़ियाँ, परंपराएँ और रीति-रिवाज समाज में स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व का विरोध करती रही हैं। इसलिए सदैव ही स्त्रियों को पुरुषों द्वारा दबाया जाता रहा है। आजादी के बाद स्त्री को पुरुषों के बंधन से मुक्ति प्रदान करने के लिए अनेक कानूनी अधिकार दिए गए परंतु महिलाओं में शिक्षा की कमी के कारण वे अपने इन अधिकारों के बारे में जागरूक ही नहीं हो पाई, प्रयोग करने की बात तो दूर की रही। शहरों की महिलाओं में कुछ जागरूकता है पर गांवों में आज भी काफी महिलाएँ अशिक्षित हैं तथा विभिन्न प्रकार के शोषण की शिकार हैं, ग्रामीण स्त्री को स्वतंत्र अस्तित्व, सम्मान न होने से उसका शोषण परिवार और समाज में निरंतर हो रहा है। 21वीं सदी के उपन्यासकार स्त्रियों की इसी स्थिति का चित्रण अपने उपन्यासों में बखूबी कर रहे हैं। 21वीं सदी के हिंदी साहित्य में नारी समस्याओं का चित्रण पारंपरिक बंधनों से मुक्ति और आधुनिक पहचान की खोज के इर्द-गिर्द घूमता है। समकालीन साहित्यकारों ने केवल बाहरी शोषण, बल्कि स्त्री के आंतरिक द्वंद्व और मनोवैज्ञानिक संघर्षों को भी प्रमुखता से उकेरा है।

मुख्य शब्द: सांस्कृतिक मान्यताएं, रीति-रिवाज, स्वतंत्र, जिम्मेदारी, अस्तित्व, परित्यक्ता, अनुष्ठान, सदैव, अत्याचार, गृहिणी, संवेदनशील, सह-जीवन, विवशता, कामकाजी।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)

This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International License (CC BY-NC-SA 4.0), which permits others to remix, adapt, and build upon the work non-commercially, provided that appropriate credit is given and that any new creations are licensed under identical terms.

How to cite this article:

डॉ. युवराज राजाराम मुळये. (2026). इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में चित्रित नारी समस्याएँ. *International Journal of Advance and Applied Research*, 13(3), 49 - 54. <https://doi.org/10.5281/zenodo.22785305>

प्रस्तावना:

21वीं सदी के उपन्यासों में चित्रित सभी स्त्रियाँ किसी न किसी प्रकार के शोषण चाहे वह सामाजिक हो, आर्थिक

हो, पारिवारिक हो, दैहिक हो, से पीड़ित दिखाई गई है। उपन्यासकार ने उनकी मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक पीड़ा को अभिव्यक्ति देते हुए उनके अंतर्मन को खोल कर पाठक के



समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। भारतीय स्त्री ने परिवार को मंदिर समझकर उसे पूजा है लेकिन इसी परिवार में दूसरे सदस्यों द्वारा उसका शोषण किया जाता है। विधवा, असहाय तथा परित्यक्ता नारियों पर परिवार तथा गाँव वालों द्वारा अत्याचार किए जाते हैं। गांवों में स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार में आज तक कोई कमी नहीं आई है। गांवों में स्थित सुदूर अंचलों में आज भी स्त्रियों का शोषण विभिन्न तरीकों से हो रहा है। बाल-विवाह, बेमेल विवाह, दहेज प्रथा जैसी कुप्रथाओं तथा गाँव के जमींदार एवं दबंगों द्वारा आज भी स्त्रियों का शोषण हो रहा है। परंपराओं, रीति-रिवाजों, धार्मिक अनुष्ठानों आदि के जाल में फंसा कर और इन परंपराओं का बोझ उस पर लादकर माहौल ही ऐसा बना दिया जाता है कि स्त्री अपने शोषण को संस्कार मानकर उसे सहती जाती है। भले ही आज हम 21वीं सदी में प्रवेश कर गए हैं तथा आधुनिक सभ्यता का चोला ओढ़े घूमते-फिरते रहते हैं परंतु समाज के अंदर आज भी दूषित मानसिकता विद्यमान है। 'रंग गई मोर चुनरिया' की रसवन्ती तथा वन्दिनी, 'हेमंतिया उर्फ कलेक्टरनी बाई' में बुंदेलखंड की बेड़नी जाति से संबंधित स्त्रियाँ, 'आछरी-माछरी' की आछरी, 'अगनपाखी' की भुवन, 'बाबल तेरा देश में' की शकीला, शगुफता, पारो, जैनव, मैना और मुमताज, 'शेफाली के फूल' की अगहनिया, सावित्री, जैसी स्त्रियाँ आज भी अपने वजूद को बचाने के लिए और अपने अस्तित्व की लाज रखने के लिए संघर्ष करती हुई नजर आती है, क्योंकि इनके पीछे गाँव और परिवार के ही पुरुष घात लगाकर बैठे हैं तो जब इनकी रक्षा करने वाले हाथ ही इनका भक्षण करने को तैयार हो जाए तो फिर किससे उम्मीद की जा सकती है। 'भगवान दास मोरवाल' के उपन्यास 'बाबल तेरा देश में' की स्त्रियाँ रीति-रिवाज एवं परंपराओं के कारण ही अनेक प्रकार की विषमताओं के दंश झेलने को मजबूर हैं। वे ना चाहते हुए भी

अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों को सहन करती रहती हैं क्योंकि वर्षों से चली आ रही परंपराओं और रीति-रिवाजों के बंधनों को तोड़ना इतना आसान नहीं है। इसी उपन्यास का एक पात्र धन सिंह इसी स्थिति के ऊपर कहता है "इतना आसान ना है रामचंद्र अरे, तोहे तो सब मालूम है कि रीति-रिवाज, धर्म-कर्म, बिरादरी और कौम भी कोई चीज होबे है। बात जब घर में है चाहे जैसे मन करे सुलझा लोगे पर देहली पार करते ही आदमी का बस सू बाहर हो जावे है। मैने तो बहुत कोशिश करी है पर हदीस और सरीयत के आगे एक ना चली।" 1. स्त्रियों को परंपरा की बेड़ियों से निकालने, उन्हें सशक्त बनाने, अपने पैरों पर खड़ा होने, अपने निर्णय स्वयं लेने के लिए उनका शिक्षित होना सबसे जरूरी है क्योंकि शिक्षित स्त्री अपने अधिकारों और अपने कर्तव्यों को बखूबी पहचान सकती है। लेकिन उनकी शिक्षा के नाम पर केवल दिखावा है।

21वीं सदी के हिंदी साहित्य में चित्रित प्रमुख नारी समस्याएं और उनके बदलते स्वरूप निम्नलिखित हैं:

1. आर्थिक आत्मनिर्भरता और कार्यस्थल पर संघर्ष:

21वीं सदी की नारी अब केवल गृहिणी नहीं, बल्कि कामकाजी है। साहित्य में यह दिखाया गया है कि नौकरीपेशा होने के बावजूद उसे घर और दफ्तर की दोहरी जिम्मेदारी का बोझ उठाना पड़ता है, जिससे वह तनाव और अपराधबोध (Guilt) से ग्रस्त रहती है।

2. पितृसत्तात्मक मानसिकता का विरोध:

समकालीन कथा साहित्य में अब स्त्री अपने अधिकारों के लिए पितृसत्तात्मक संरचना से सीधे टकरा रही है। 'अमलतास' उपन्यास की कामदा जैसी पात्र, जो आत्मनिर्भर है, अपने पति को परित्यक्ता के रूप में चुनौती देती है और हक मांगती है।



3. अस्मिता (Identity) की तलाश:

विवाह के बाद स्त्री का अस्तित्व पुरुष के नाम से न जुड़कर, स्वयं की पहचान बनाने का संघर्ष साहित्य में उभरा है। अपनी विवशता और पीड़ा को शब्दबद्ध कर, वे अब घुटन भरी सीमाओं को तोड़ रही हैं।

4. देह और देहमुक्ति की चर्चा:

लेखिकाओं ने देह-विमर्श के माध्यम से यह स्थापित किया है कि स्त्री का शरीर केवल उपभोग की वस्तु नहीं है। अपने जीवन के विकल्प स्वयं चुनने की प्रक्रिया में, देहमुक्ति और अपनी पसंद चुनने का हक एक महत्वपूर्ण मुद्दा है।

5. वैश्वीकरण और बाजारवाद का प्रभाव:

उदारीकरण के दौर में स्त्री के प्रति नजरिया बदला है। साहित्य में दिखाया गया है कि कैसे बाजार नारी को वस्तु (Commodity) के रूप में देखता है, और कैसे स्त्री इस छद्म सौंदर्य और उपभोगवादी संस्कृति के बीच अपनी गरिमा बचाने का संघर्ष कर रही है।

6. सामाजिक और पारिवारिक वर्जनाओं से मुक्ति:

समकालीन रचनाओं में वर्जनाओं को तोड़ते हुए, स्त्री अपनी शारीरिक और मानसिक आज़ादी की बात कर रही है। इसमें एकल मातृत्व (Single Motherhood), तलाक और लिव-इन रिलेशनशिप जैसे विषयों पर भी बेबाकी से लिखा जा रहा है।

7. मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक शोषण:

शारीरिक हिंसा के अलावा, 21वीं सदी के साहित्य ने भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक शोषण को भी उजागर किया है। एक कामकाजी महिला के रूप में भी, उसे पति या ससुराल पक्ष से भावनात्मक शोषण का सामना करना पड़ सकता है।

8. घरेलू हिंसा और शारीरिक शोषण:

शराबी पति द्वारा मारपीट और शोषण को सहती स्त्री का यथार्थ चित्रण आधुनिक उपन्यासों में मिलता है। विशेषकर आदिवासी समुदायों (जैसे मैत्रेयी पुष्पा के 'अल्मा कबूतरी' में) में नारी की स्थिति और उनके शारीरिक शोषण की समस्या को सजीव रूप में दर्शाया गया है।

9. दोहरी जिम्मेदारी का बोझ:

कामकाजी महिलाओं के जीवन में घर और बाहर की जिम्मेदारियों के बीच संतुलन बिठाने का संघर्ष एक बड़ी समस्या के रूप में उभरा है। एक भी जिम्मेदारी चूकने पर स्त्री का अपराधबोध से ग्रस्त होना उसके मानसिक दबाव को दर्शाता है।

विवेच्य उपन्यासों की ऐसी ही कुछ समझदार और अपने अधिकारों के प्रति सचेत कुछ जागरूक स्त्रियाँ अपने प्रयत्नों से अपने आसपास की अन्य लड़कियों को शिक्षित करने की कोशिश करती हैं तो उन्हें अपने ही परिवार के मर्दों के विरोध और गुस्से को झेलना पड़ता है। 'शेफाली के फूल' की सशक्त स्त्री पात्र सावित्री अपने गाँव की स्त्रियों को शिक्षित करने के लिए अपने घर में स्कूल खोलने का प्रयास करती है क्योंकि वह इस बात को भली भाँति पहचानती है कि स्त्रियों के शोषण का वास्तविक कारण उनका शिक्षित नहीं होना है लेकिन उसकी इस कोशिश पर उसका पिता ठाकुर बजरंगी सिंह उसे इस तरह जवाब देता हैं, "एक बात समझ लो, सावित्री स्कूल-फिस्कूल यहाँ कुछ नहीं खुलेगा, समझी तुम तो मेरे घर को अभी से अनाथ कर दे रही हो सो भी उनके लिए जिन्हें मैं दो कौड़ी के लिए भी महंगा मानता हूँ!"² लेकिन सावित्री एक बहुत ही समझदार और सुलझी हुई महिला है वह इस बात को भली प्रकार समझती है कि गाँव के सभी तबकों की स्त्रियों की दयनीय और सोचनीय दशा उनके अपने ही परिवार और समाज के पुरुषों द्वारा उनका दमन और अत्याचार है। वह कहती



है, "हमारे गाँव अभी अठारहवीं शताब्दी में ही सांस ले रहे हैं क्योंकि पुरुष जानता है कि यदि महिलाओं को पूर्ण स्वाधीनता, समानता, समस्तर प्रदान कर दिया गया तो उनकी दादागिरी कौन सहेगा" 3. ऐसा नहीं है कि स्त्रियों की ऐसी दशा को सिर्फ स्त्री पात्र ही समझती है। विवेच्य उपन्यासों के कई पुरुष पात्र भी स्त्रियों की समाज और परिवार में खराब स्थिति के कारणों को जानते हैं। 'बाबल तेरा देश में' नामक उपन्यास में स्त्रियों की दुर्दशा पर नसीब खान कहता है, "एक बात और बता दूँ के हमारा जितना भी धर्मग्रंथ है, उनको सहारा लेकर सबसे ज्यादा जुल्म भी या औरत जात पे ही हुआ है" 4.

21वीं सदी के उपन्यासों में औरत जात पर होने वाले हर प्रकार के अन्याय को उकेरा गया है। औरत के शोषण का सबसे बड़ा रूप है उसका शारीरिक शोषण। विवेच्य उपन्यासों में अनेक स्त्रियाँ इसी शोषण का शिकार बनती हैं। 'आछरी-माछरी' में आछरी दुष्ट तुलसापंत की हवस का शिकार बनती है और अपने ही परिवार द्वारा त्याग दी जाती है। स्त्रियों के शारीरिक शोषण की सबसे बड़ी विडंबना यह होती है कि दैहिक शोषण का शिकार भी वही बनती है और समाज और परिवार के कोपभाजन का शिकार भी वही बनती है। समाज में उसकी गलती ना होने पर भी उसी को गलत ठहराया जाता है ऐसा ही 'आछरी-माछरी' की पात्र आछरी के साथ होता है। समाज की सभी वर्गों, जातियों, धर्मों, तबकों की स्त्रियों की वेदना को अभिव्यक्ति देती हुई आछरी कहती है कि "वैसे भी दुनिया के दस्तूर हैं बेटे! वे मुझ जैसी औरत को ही नहीं दुनिया की हर औरत जात को दिन के उजाले की अपेक्षा रात के अंधेरे में देखना पसंद करते हैं। ताकि हर औरत का रास्ता एक अंधेरी गुफा की तरफ ही चलता चला जाए" 5. लेकिन आछरी अपने साथ हुए इस अन्याय के आगे झुकती नहीं है और परिवार के द्वारा त्याग दिए जाने पर भी वह हिम्मत नहीं हारती है और

हौसला करके आगे बढ़ती है तथा एक दिन गाँव की प्रधान बनती है और गाँव की दूसरी औरतों के लिए प्रेरणा बनती है। 'अगन पाखी' की भुवन की शादी भी पारिवारिक लोगों के व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिए ऐसे व्यक्ति के साथ करा दी जाती है कि उसकी पुरी जिन्दगी संघर्षों में ही निकल जाती है। 21वीं सदी के उपन्यासकारों ने स्त्री के जीवन के विविध पहलुओं और उनकी समस्याओं को अत्यंत संवेदनशील तरीके से चित्रित किया है। जन्म से ही लड़की के मन मस्तिष्क में संस्कारों की बेड़ियाँ बैठा दी जाती हैं। बचपन में ही उसे बताया दिया जाता है कि उसके कर्तव्य क्या है? उसकी सीमा क्या है? उसे जीवन में कैसे रहना है? दूसरों को प्रसन्न कैसे रखना है? लेकिन उसे उसके अधिकारों के बारे में कभी नहीं बताया जाता। उस पर इस तरह से मनोवैज्ञानिक रूप से संस्कार, रीति-रिवाजों की गठरी लाद दी जाती है कि उसे स्वयं को इन बेड़ियों को तोड़ना अपराध लगने लगता है। हालांकि समाज में महिलाओं की दायम दर्जे की स्थिति को सुधारने के लिए सरकार ने बहुत से कानूनी प्रावधान जैसे पैतृक संपत्ति में अधिकार, कन्या भ्रूण हत्या विरोधी कानून, महिला सुरक्षा कानून, शिक्षा और समानता का अधिकार, घरेलू हिंसा संबंधी कानून बनाए हैं, जिनसे काफी हद तक महिलाओं की स्थिति मजबूत भी हुई है। सरकारों द्वारा जगह-जगह लड़कियों की शिक्षा के लिए अलग से विद्यालय, महाविद्यालय खोले गए हैं। 'ग्लोबल गाँव का देवता' नामक उपन्यास में ऐसा ही एक विद्यालय देखिए "उस पर प्रखंड कोयलबीघा का भौरपाटा पहाड़ के ऊपर जंगलों के बीच वह आवासीय विद्यालय। पीटीजी गर्ल्स रेजिडेंशियल स्कूल। प्रीमिटिव ट्राइक्स, आदिम जनजाति परिवार की बच्चियों के लिए आवासीय विद्यालय में विज्ञान शिक्षका क्या पोस्टिंग थी!" 6. इस तरह से हम देखते हैं कि सरकारें लड़कियों और स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए



कटिबद्ध है पर आवश्यकता इस बात की है कि महिलाएँ अपने अधिकारों और कर्तव्यों में अंतर करना सीखें। उसे अपनी हालत सुधारने और अपने खिलाफ हो रहे अत्याचार को खुद समझना होगा तभी सुधार संभव है।

आज का समय भूमंडलीकरण का है, जिसमें सब लोग अपनी स्थानीयता का परित्याग करके ग्लोबलाइजेशन का शिकार हो रहे हैं जिससे संपूर्ण विश्व पर बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति हावी हो रही है। हमारे लाख कोशिश करने पर भी बाजार हमारे जीवन में जबरदस्ती घुसता जा रहा है या यूँ कहें कि घुसाया जा रहा है। इस बारे में मैं प्रभा खेतान कहती हैं-“बाजार हर जगह है-दुनिया के हर कोने में। और यह बाजार चौबीसों घंटे सक्रिय रहता है।”⁷ इस बाजारवाद ने सबसे अधिक स्त्री को अपने लपेटे में लिया है। इक्कीसवीं सदी ने स्त्री को आर्थिक आजादी जरूर दी है पर साथ ही उसे बाजार में एक चीज की तरह सबके सामने नुमाइश के लिए भी खड़ा कर दिया है। स्त्री के शरीर का इस्तेमाल बाजार में सभी बड़ी-बड़ी कंपनियाँ अपने उत्पाद को बेचने के लिए धड़ल्ले से कर रही है और हैरानी की बात ये है कि स्त्रियाँ स्वयं खुद का इस्तेमाल करवाकर गर्व महसूस कर रही हैं। इस पर लता शर्मा कहती हैं-“मुक्त अर्थव्यवस्था के सामने नाच रही है अर्द्धनग्न स्त्री देहा।”⁸ इसमें भी स्त्रियों में आपसी होड़ मची है कि कौन अपने शरीर का प्रदर्शन अधिक कर सकती है। इसी उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण महिलाएँ हर मुद्दे पर खुलकर बोलती हैं और अपनी बात रखती हैं। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासकार ने ये बात भी बड़ी ही ईमानदारी से पाठकों के समक्ष रखी है। ‘खानाबदोश ख्वाहिशें’ उपन्यास की नायिका निधि खुले दिल से स्वीकार करती है-“मैंने जो किया, कहा और जिया, उसकी पूरी जिम्मेदारी उठाती हूँ। मुझमें किसी किस्म का गिल्ट नहीं।... मैं भी कुछ दिनों पहले तक मानती थी कि औरत

को पुरुष दिशा देता है। मैं अपनी तलाश में बहुत भटकी। बहुत पुरुषों में सहारा ढूँढ़ा। पर मिला तो अपने ही कंधों पर। हम हर पुरुष में एक आदर्श ढूँढ़ते हैं। सब किताबी बातें हैं। ऐसा कुछ नहीं होता है।”⁹ लेकिन गौर करने पर हम देखते हैं कि इसी बढ़ते हुए बाजारीकरण और उपभोक्तावाद ने स्त्री को भोग की वस्तु बना दिया है, लेकिन स्त्री अपने खिलाफ हो रहे ऐसे शोषण के विरुद्ध आवाज भी उठाती हुई दिखती है। ‘सेज पर संस्कृत’ की नायिका संघमित्रा कहती है-“नहीं सर, मैं इस गंदगी में लोट नहीं लगा सकती। मैं इस हवा-पानी की जीव नहीं। यदि मैं आत्मविहीन हो गई, मेरा स्वाभिमान पराजित हो गया, गर्दन मरोड़ दी गई उसकी तो कितनी दूर जा पाऊँगी मैं? जब जीवन ही हाथ से निकल जाएगा तो जीविका लेकर क्या करूँगी मैं?”¹⁰

21वीं सदी के उपन्यासों में जो एक और महत्वपूर्ण बात देखने को मिल रही है वह है सह-जीवन संस्कृति का विकास। सह-जीवन एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें दो लोग बिना किसी वैवाहिक बंधन के एक साथ रहते हैं। सह जीवन पश्चिम के देशों में काफी आम हो चुका है, इस रुझान को पिछले कुछ दशकों में काफी बल मिला है जिसका कारण बदलते सामाजिक विचार, परिवेश, रहन-सहन इत्यादि माने जा सकते हैं। यह संस्कृति महानगरों में अधिक देखने को मिल रही है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और अपने फैसले स्वयं लेने वाली महिलाओं में यह प्रवृत्ति अधिक देखने को मिल रही है। लेकिन इस संस्कृति को पुरानी पीढ़ी स्वीकार नहीं कर पा रही है। प्रसिद्ध लेखिका ममता कालिया ने अपने उपन्यास ‘दौड़’ में सह-जीवन पर दो पीढ़ियों के द्वंद्व को दर्शाया है, “मैंने तो ऐसी कोई लड़की नहीं देखी जो शादी के पहले ही पति के घर में रहने लगे। तुमने देखा क्या है माँ? इलाहाबाद से निकलोगी तो देखोगी ना यहाँ गुजरात, सौराष्ट्र में शादी होने के पहले ऐसी महीने भर ससुराल



में रहती है लड़का-लड़की एक दूसरे के तौर तरीके समझने के बाद ही शादी करते हैं।”¹¹ शरद सिंह ने अपने उपन्यास ‘कस्बाई सीमोन’ में कस्बाई स्त्री का चित्रण करते हुए उस पर भूमंडलीकरण के प्रभाव का उल्लेख किया है। उपन्यास की पात्र सुगंधा सह-जीवन प्रणाली का समर्थन और विवाह प्रथा का विरोध करती हुई कहती है - “उफ् ये विवाह की परिपाटी। गढ़ी तो गई स्त्री के अधिकारों के लिए जिससे उसे, उसके बच्चों को सामाजिक मान्यता और आर्थिक सम्बल आदि मिल सके लेकिन समाज ने ही इसे तमाशा बना कर रख दिया। मैं इस तमाशे को नहीं जीना चाहती थी। मैंने सोच रखा था कि कभी विवाह नहीं करूंगी। माँ के अनुभवों की छाप मेरे मन मस्तिष्क पर गहरे तक अंकित थी। उसे चाहकर भी नहीं मिटा सकती थी।”¹²

निष्कर्ष:

निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि 21वीं सदी के विवेच्य उपन्यासों में स्त्रियों के दमन और उन पर होने वाले अत्याचारों के साथ-साथ उनकी हालातों से लड़ने की क्षमता और साहस को भी सशक्त अभिव्यक्ति दी गई है। वह अपने साथ हुए अन्याय से हार नहीं मानती बल्कि अपने खिलाफ उठने वाली हर आवाज का माकूल जवाब देते हुए संघर्षों से सामना करती है और समाज और देश के विकास में अपना योगदान भी दे रही है और दूसरी महिलाओं को भी प्रेरित कर रही है। इन सबके साथ 21वीं सदी के उपन्यासों की स्त्री भूमंडलीकरण और बाजारीकरण के दौर में आधुनिक जीवन

शैली को भी खुले दिल से अपना रही है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के विरोधी न होकर एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों के योगदान और आपसी सहयोग से ही परिवार, समाज और राष्ट्र का कल्याणकारी विकास संभव है, यह बात समाज के इन दोनों आधार स्तंभों को समझनी होगी। 21वीं सदी का हिंदी साहित्य नारी को केवल 'श्रद्धा' या 'दया' की पात्र न मानकर, उसे एक 'मनुष्य' के रूप में स्थापित करता है। यह विमर्श केवल पुरुष का विरोध नहीं, बल्कि समानता और आत्म-सम्मान की तलाश है।

संदर्भ:

1. भगवानदास मोरवाल : बाबल तेरा देश में, पृष्ठ क्रमांक – 44
2. विद्यावती दुबे : शेफाली के फूल, पृष्ठ क्रमांक – 69
3. विद्यावती दुबे : शेफाली के फूल, पृष्ठ क्रमांक – 146
4. भगवान दास मोरवाल : बाबल तेरा देश में, पृष्ठ क्रमांक – 492
5. हरिसुमन विष्ट : आछरी-माछरी, पृष्ठ क्रमांक – 104
6. रणेन्द्र : ग्लोबल गाँव के देवता, पृष्ठ क्रमांक – 1
7. प्रभा खेतान : भूमंडलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र, पृष्ठ क्रमांक -16
8. लता शर्मा : सही नाप के जूते, पृष्ठ क्रमांक – 9
9. जयंती : खानाबदोश ख्वाहिशे, पृष्ठ क्रमांक – 190
10. मधु कंकरिया : सेज पर संस्कृत, पृष्ठ क्रमांक – 159
11. ममता कालिया : दौड़, पृष्ठ क्रमांक – 64
12. सुश्री शरद सिंह : कस्बाई सिमोन, पृष्ठ क्रमांक - 77